नारी मुक्ति के पक्षधर महर्षि वाल्मीकि

-डॉ० सत्यपाल शास्त्री श्रीवत्स

यह एक निर्विवाद सत्य है, कि वाल्मीकि-रामायण एक श्रेष्ठ काव्य भी है, इतिहास और पुराण भी। इसमें वर्णित तत्कालीन समाज की राजनैतिक सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सभी प्रकार की परिस्थितियों का सरल एवं सहज-स्वाभाविक कविता में साङ्गोपाङ्ग चित्रण है। इसकी ललित-संस्कृत भाषा कालिदास तक के कवियों के लिए प्रेरणास्रोत बनी रही।

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि रावण-विजय के बाद जब अपने राज्याभिषेक के बाद विभीषण सीता को अशोक वाटिका से अपने साथ लाकर श्री राम के सामने उपस्थित हुए तो उस समय श्री राम के पास देव राक्षस, मानव, ऋषिगण और वानर आदि सभी बैठे हुए थे। पूरे एक वर्ष का वियोग विषम काल व्यतीत करने के बाद राम को मिलने के लिए आई उत्सुक सीता के मन में कई प्रकार के विचार उठ रहे थे। वह पति से मिल कर अपने सारे दुख-क्लेश सदा के लिए भूल जाना चाहती थी। अधोमुखी होकर समक्ष खड़ी सीता को देखते ही राम के मन में उसके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया और उन्होंने सीता को न अपनाने का मन ही मन निश्चय कर लिया। ऐसी स्थिति में महर्षि वाल्मीकि अपनी कविता के माध्यम से हमें सीता के पावन चरित्र का सन्देश देते हैं। चाहे वहां उन्होंने सीता के मुंह से स्पष्ट उक्तियां कहलवाईं या देवताओं और ऋषियों द्वारा उसकी चारित्रिक पवित्रता का प्रमाण दिलवाया चाहे अग्नि परीक्षा की कल्पना करके या अग्नि परीक्षा के रूपक के माध्यम से उसके चरित्र को पवित्र घोषित किया पर राम को अन्ततः विश्वास करना ही पड़ा कि रावण की कैद में एक वर्ष रहकर भी सीता निष्कलंक एवं पवित्र है। वस्तुतः आदि कवि बाल्मीकि अपनी कृति की नायिका के चरित्र पर किसी भी प्रकार का लाञ्छन नहीं देखना चाहते थे । उसे वह हर प्रकार के शुद्ध चरित्र के रूप में प्रस्तुत करके ही अपनी अमरकृति को संसार को समर्पित करना चाहते थे। इस घटना के कई वर्षों के बाद जब राम और सीता का घर-परिवार सुख शांति एवं राज्य प्रशासन की व्यवस्था भी सुचारू रूप से चल रही थी और समयानुसार सीता गर्भवती होकर सम्पूर्ण रघुवंशीय परिवार और सारी प्रजा की शुभ आकांक्षाओं का केन्द्र बन गई थी तो नियति ने पुनः अपना खेल खेलना आरम्भ कर दिया। सम्भवतः सीता को भी तनिक विश्वास नहीं होगा कि उसके सुख के दिन केवल बिजली की चमक के समान अल्पावधि के हैं। नियति का वज्रपात हुआ और सीता को पुनः पूर्ववत् आशङ्काओं, सन्देहों और झूठे

लाञ्छनों के झंझावात में फंसाने का उपक्रम आरम्भ हो गया। अन्तर केवल इतना था कि लङ्का में रावण की अशोक वाटिका से विभीषण के साथ आकर राम के हृदय में उसकी चारित्रिक शुद्धि के विषय में आशंका उत्पन्न हुई थी, जबकि अब एक साधारण प्रजाजन धोबी के मन में और वह भी सुख-समृद्धि और न्याय के प्रतीक रामराज्य की राजधानी अयोध्या में इस प्रकार की आशङ्का उत्पन्न हो गई। सम्भवत: उस समय इस प्रकार की आशङ्का लोकापवाद बन कर पूरे अयोध्या समाज में विष बेल की तरह फैलती जा रही होगी। अन्तत: अपने गुप्तचर भद्र के मुंह से भी जब राम ने यह सुना कि एक धोबी दम्पति की आपसी कलह के अन्तर्गत धोबी ने पत्नी से कहा -"जाती हो तो जाओ मैं राम नहीं हूं जिसने रावण के घर एक वर्ष रही हुई अपनी पत्नी को पुन: अपना लिया था। मैं तुम्हें कभी नहीं अपनाऊंगा।"

वस्तुत: राजा राम के लिए सीता के प्रति लोकापवाद का ऐसा मिथ्यारोप असह्य था कि उन्होंने माताओं गुरु वशिष्ठ, भाई तथा सुधी प्रजाजन और स्वयं सीता आदि की बात सुने बगैर नीति विरुद्ध एक तरफा निर्णय करके सीता को त्यागने का विचार कर लिया। न जाने राम ने राजा के कर्त्तव्य भूलकर इस प्रकार का कठोर एवं एक-पक्षीय निर्णय इतने उतावलेपन में क्यों ले लिया था ? लङ्का में जब सीता की अग्नि परीक्षा हुई थी तो देवताओं, ऋषियों, राक्षसों और वानर आदि सभी जातियों और संस्कृतियों के घटकों ने सीता की चारित्रिक शुद्धि का प्रमाण दे दिया था। अब यदि सीता के चरित्र पर सन्देह के कारण लोकापवाद का आरोप लग रहा था तो राम ने किसी की भी सम्मति लिए बगैर एक पक्षीय निर्णय क्यों लिया ? इससे तत्कालीन राजा की प्रशासनिक दुर्बलता पर इतिहास तो मौन है पर महाकवि कालिदास- ने अपनी कृति रघुवंश में इस निर्णय पर अवश्य कटाक्ष किया है। आश्चर्य तो यह है कि राम की सभा के सभासद वशिष्ठ जैसे गुरु जन, राज माता कौशल्या सहित अन्य माताएं-तथा वरिष्ठ नागरिक सभी सीता के निष्कासन के उस निर्णय पर सर्वथा मौन रहे विचारणीय है। क्या सच ही सीता का चरित्र लाञ्छित था ? या वे सब राजा राम के प्रशासनिक अंकुश से त्रस्त थे ? या सभी राम के व्यक्तित्त्व से इतने प्रभावित थे कि उनके किसी भी निर्णय का विरोध करने में असमर्थ थे ? यहां पर फिर यह प्रश्न कौंधता है कि यदि सच ही सीता के चरित्र में किञ्चित् भी अपवित्रता का चिन्ह मात्र भी होता तो क्या वाल्मीकि उस पति-परित्यक्ता को अपने आश्रम में शरण देकर उसे अपनी पुत्री समझकर उसे संरक्षण देते ? और बाद में राम की सभा में सभी के सम्मुख सीता की चारित्रिक शुद्धि का अपनी तप: साधना का प्रमाण देते। हां, यहां यह बात अवश्य उल्लेखनीय है कि राम के सब से अधिक आज्ञाकारी भाई लक्ष्मण ने सीता-निष्कासन का उस समय अवश्य प्रतिरोध किया था जब उसे राम ने सीता को उसकी दोहद-इच्छा पूरी करने के लिए वन-भ्रमण का झूठा झांसा देकर वन में छोड़ आने का आदेश दिया था। परन्तु उसे राजाज्ञा का उल्लंघन करने का अपराधी बताया गया

तस्मात्त्वं गच्छ सौमित्रे नात्र कार्या विचारणा

अप्रीति र्हि परा मह्यं त्वयैतत्प्रति वारिते ॥

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च।

ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन 55/21-21

इस पर तो वह सिर झुका कर राजाज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हो गया। किन मर्यादाओं और किन आदर्शों पर टिका वह समाज जहां गर्भवती नारी की भी ऐसी दुर्गति होती थी वह भी सीता जैसी आदर्श नारी जिस पर सन्देह और झूठी आशङ्काओं के कारण लोकापवाद का आरोप था। सीता-निष्कासन की घटना से हमें रामराज्य की कल्पना भी दुखद ही प्रतीत होने लगती है।

अन्तत: राजाज्ञा को शिरोधार्य करके जब लक्ष्मण रघुकुल के उत्तराधिकारी को गर्भ में लिये उस सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम से कुछ दूर वन में सायंकाल के समय राजाज्ञा सुनाकर अकेली छोड़ कर जाने लगता है तो सीता सहसा चीत्कार कर उठती है। उस समय उसे कुछ क्षण के लिए राजा राम, राज दरबार के सभासदों, गुरु जनों एवं प्रबुद्ध-वरिष्ठ नागरिकों पर रोष तो आया पर असहाय किंकर्तव्य विमूढ़ बनी रही और उसने चुनौती स्वीकार कर ली।

"वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा"

अर्थात् हे लक्ष्मण, मेरी ओर से राजा राम को कहना कि आपने एक पक्षीय निर्णय लेकर मुझे धोखे से वन भिजवाने और वहीं छोड़ने का आदेश देकर मेरे साथ घोर अन्याय किया है। आखिर मैं भी तो आपके प्रजाजनों में से हूं।

स्पष्ट है कि सीता द्वारा राम को भेजे गए इस प्रकार के सन्देश से राजा राम की निर्णय कुशलता पर कड़ा प्रहार भी है तत्कालीन समाज के आदर्शों पर कटाक्ष भी।

लक्ष्मण के वहां से चले जाने के पश्चात् जब रात्रि के समय सर्वथा असहाय सीता के रोने की कारुणिक ध्वनि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में शिष्यों को सुनाई पड़ती है तो वे तुरन्त महर्षि की आज्ञा से सीता के पास पहुंच कर उसे सान्त्वना देकर आश्रम में ले आते हैं। महर्षि के सम्मुख उपस्थित होकर जब वह उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करती है तो वह उसे आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि मिथिला पति राजा जनक (सीता के पिता) उनके मित्र हैं, अत: वह उन्हें (महर्षि को) भी अपना पिता ही समझ कर उनके आश्रम में निर्भय होकर रहे। आश्रम में उसे हर प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त होगी। महर्षि के सान्त्वना एवं पितृ-वात्सल्य से अनुप्राणित शब्दों से सीता को पूर्ण आश्वासन और शांति प्राप्त होती है। और तदनन्तर आश्रम के उन्मुक्त एवं शांत प्राकृतिक वातावरण में रहते हुए जब वह आश्रम वासियों की ओर से मिले प्यार एवं स्नेह से भी आप्लावित होने लगती है तो उसे अयोध्या नरेश के राजसी राज प्रासादों का घुटन भरा सुख भूल सा जाता है। महर्षि के शिष्य गण तथा अन्य आश्रमवासी उसकी सुख-सुविधाओं का सदा ध्यान रखते हैं।

यह भी एक संयोग ही था कि जब राम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा सीता को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ा गया तो उस समय महर्षि अपनी कृति रामायण का उत्तर काण्ड रच रहे थे। ऐसे समय में उनके चरित काव्य की नायिका के उनके आश्रम में पहुंच जाने से एवं बाद में वहीं पर लव-कुश का जन्म होने, उन्हीं के सान्निध्य में उनका पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा होने से उनके काव्य में अवश्य और अधिक गुणवत्ता एवं गरिमा का आ जाना स्वाभाविक था। आदि कवि ने अनिवार्यतः अपनी नायिका को बड़ी समीपता से अनेक रूपों में देखा-परखा होगा। जैसे पति द्वारा परित्यक्ता पतिव्रता पत्नी के रूप में, अयोध्या नरेश की महारानी के रूप में, अपनी सेवा शुश्रूषा करती हुई बेटी के रूप में, ऋषि-पत्नियों के साथ व्यवहार करती हुई बहन सखी के रूप में तथा एक आदर्श मां, एक आदर्श महिला के रूप में जिसने अपने बेटे लव-कुश का पालन-पोषण एवं शिक्षण किया है। इससे जहां महर्षि की संवेदना को बल मिला वहां उनकी कुशल लेखनी भी सीता का चरित्र-चित्रण करने में उन्मुक्त रही। इसीलिए बाद में महर्षि राम दरबार में चुपचाप बैठे स्वयं राम, उसके सभासदों, प्रजाजनों तथा वसिष्ठ वामदेव, जावालि, विश्वामित्र, गौतम, कात्यायन, भार्गव, वामन आदि ऋषियों के समक्ष भुजाएं उठा-उठा कर घोषणा करते हैं-''इयं दाशरथे, सीता सुव्रता धर्मचारिणी।

अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रम समीपतः

इमौ तु जानकी पुत्रौ युवौ च यम जातकौ।

तवैव दुर्धर्षौ सत्यमें तद् ब्रवी किं ते

हे दशरथ पुत्र राम, यह सीता अपने पतिव्रत धर्म के पालन करने वाली है। इसे लोकापवाद के कारण मेरे आश्रम के समीप छोड़ा गया था। और ये जुड़वां वीर बालक लव-कुश जानकी और आपके ही पुत्र हैं । मैं यह बात सत्य कर रहा हूं ।

अपनी बात के समर्थन में वह आगे कहते हैं:-

''प्राचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघव नन्दन।

न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्र कौ।[2]

लोकापवाद भीतस्य तव राम महाव्रत,

प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि।[3]

हे रघुनन्दन, मैं प्रचेतान ऋषि का दशम पुत्र हूं। मुझे स्मरण नहीं है कि कभी मैंने झूठ बोला हो । इसीलिए दावे के साथ कहता हूं कि ये दोनों तुम्हारे ही पुत्र हैं।

हे राम, लोकाववाद से डरे हुए तुम्हें सीता स्वयं अपनी पवित्रता का विश्वास दिलाए गी। आप इसे ऐसा करने की आज्ञा दे दीजिए।

महर्षि वाल्मीकि राम तथा उनकी सभा में उपस्थित सभी जनों को सीता की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए अपनी तपश्चर्या तथा शुभ कर्मों का बखान करते हुए कहते हैं:-

बहु वर्णा सहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।

नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥

मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्व न किल्विषम्।

तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि॥[4]

हे रघुनन्दन, मैंने कई सहस्र वर्षों तक तपस्या की है। उसका मुझे कुछ भी फल न मिलें एवं मैंने मन, कर्म और वचन से भूतकाल में कभी कोई बुरा काम नहीं किया है। यदि सीता पाप रहित है। तभी मुझे उसका फल मिले, अन्यथा न मिले।

सीता को लेकर वाल्मीकि सशक्त शब्दों में इस प्रकार कहते हैं-

अहं पञ्चसु भूतेषु मनः षष्टेषु राघव।

विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वन निझरे॥

इयं शुद्ध समाचारा आपापापति देवता।

लोकापवाद -भीतस्य प्रत्ययं तवदास्यति॥

तस्मादियं नरवरात्मज, शुद्ध भावां दिव्ये न दृष्टि विषयेण मया प्रदिष्टा।

लोकापवाद कलुषी कृत चेतसा यात्यक्तात्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा॥[5]

हे राघव, मैंने अपनी पांचों इन्द्रियों और छटी मन नामक इन्द्रिय द्वारा पूर्णतया सोच कर ही सीता को चारित्रिक दृष्टि से पवित्र मानकर इसे घोर वन में एक निर्झर के समीप से बुलवाकर अपने आश्रम में इसे आश्रय दिया था।

हे राम, पाप इसे छू तक नहीं सका है, अतः इसका आचरण हर प्रकार से नारी धर्म के अनुकूल है। यह अपने पति को हर प्रकार से पूज्य एवं देव सदृश मानती है। मुझे विश्वास है कि यह लोकापवाद से त्रस्त आपको अपनी पवित्रता का स्वयं विश्वास दिलाएगी। आपने यह जानते हुए भी कि सीता पवित्र है तो भी आपने लोकापवाद के भय से त्याग दिया था।

वाल्मीकि नारी जाति के प्रति अन्याय के विरुद्ध निर्भीकता से संघर्ष करके उसे उसका अधिकार दिलवाकर ही रहने के पक्षधर थे। यही कारण है कि उनकी उपर्युक्त तथ्यपूर्ण उक्तियां सुन कर राम को अपने कृत्य पर लज्जा आ जाती है और इसीलिए वे सभी के सामने महर्षि से अपने निर्णय के लिए क्षमा याचना भी करते हैं। परन्तु इसके साथ-साथ सम्भवत: अपने राजहठ से प्रेरित होकर महर्षि को सबके सामने कहते हैं- हे मुनिश्रेष्ठ, यद्यपि मुझे आपकी बातों पर पूर्ण विश्वास है एवं सीता के बारे आपके द्वारा दिये गए प्रमाणों से भी मैं सन्तुष्ट हूं परन्तु तो भी यदि यहां उपस्थित जन समुदाय के समक्ष सीता का अपनी पावनता का परिचय देना

"शुद्धायां जगतो मध्ये वैदेह्यां प्रीतिरस्तु मे,

सीता शपथसंभ्रान्ता: सर्व एव समागता:।[1]

आपने सभी के सम्मुख सीता की चारित्रिक पवित्रता का जो प्रमाण दिया है उससे सीता के प्रति मेरी प्रीति अवश्य बढ़ गई है, परन्तु क्योंकि सीता के अचानक यहां आ जाने से सभी इसके मुंह से भी इसका प्रमाण चाहते हैं।

राम के ये वचन सुनकर गेरुए वस्त्र पहने हुए सीता अपनी निम्न दृष्टि और मुख लिये वहां सभी के सम्मुख उपस्थित होकर एवं दोनों हाथ जोड़कर धरती माता के आगे इस प्रकार प्रार्थना करने लगी-

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।

तथा मे माधवी देवी विवरं दातु महति॥

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्थये।

तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

यथैतत्सत्य मुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।

तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमईति॥[2]

हे भगवती वसुन्धरे, यदि मैं राम को छोड़कर किसी अन्य का मन से भी ध्यान नहीं करती हूं तो तुम मुझे अपने भीतर स्थान दे दो।

हे धरती माता, यदि मन, कर्म और वचन से मैं केवल राम का ही चिन्तन करती हूं तो तुम मुझे अपनी गोदी में स्थान दे देना।

हे माता, यदि मैंने यह सत्य कहा है कि मैं राम के अतिरिक्त किसी अन्य को जानती तक भी नहीं हूं तो तुम मुझे अपनी गोदी में स्थान दे देना।

आदि कवि लिखते हैं कि सती सीता की उस अद्भुत प्रार्थना का ऐसा प्रभाव हुआ कि सब के देखते-देखते सामने एक स्थान से धरती फटी जिसमें से एक अद्भुत एवं दिव्य सिंहासन उभर कर सामने आ गया। वह अद्भुत सिंहासन बड़े-बड़े पराक्रमी नागों द्वारा अपने सिरों पर धारण किया हुआ था। उस सिंहासन पर दिव्य वस्त्राभरणों से विभूषित पृथिवी देवी विराजमान थीं-

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासी तदद्भुतम्।

भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासन मनुत्तमम्॥

ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमित विक्रमै: ।

दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्य रत्न विभूषितै: ।[1]

उस समय राम की सभा में बैठे हुए सभी जनों के आश्चर्य चकित देखते-देखते धरती माता ने पहले सीता का अभिनन्दन किया और फिर उसे अपने अंक में लेने के बाद उस दिव्य आसन पर बैठा दिया-

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।

स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्॥[2]

इसके तुरन्त बाद नाटकीय पटाक्षेप के सदृश धीरे-धीरे वह दिव्य सिंहासन धरती के भीतर समाने लगा और इसके साथ ही साथ धरती के उस फटे हुए भाग के दोनों छोर आपस में मिल गए जिससे धरती का वह भाग पुन: यथावत् ठोस हो गया था। आकाश से फूलों की वर्षा हुई थी। और देव, यक्ष, गन्धर्व किन्नर और सिद्ध सभी सीता धन्य हो, धन्य हो पुकारने लगे थे और राम की सभा में बैठे सीता के प्रशंसकों के साथ उसके चरित्र पर सन्देह की अंगुलियां उठाने वाले भी अवाक् होकर सहसा कहने को विवश हो उठे थे-'धन्य हो सीता'।

इस आश्चर्यजनक एवं रोमान्चकारी दृश्य के स्वयं द्रष्टा महाकवि वाल्मीकि इस प्रकार कहते हैं-

तामासन गतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्।

पुष्पवृष्टिरा विच्छिन्ना दिव्या सीता मवाकिरत्॥

साधुकारश्च सुमहान्देवानां सहसोत्थित:।

साधु-साध्विति वै सीते, यस्यास्ते शीलमी दृशम्॥

---

1. वा० रा० अ० का० 17/10
2. वही 14/16